भारत सरकार

भारत

का

विधि

आयोग

उच्चतम न्यायालय का दिल्ली में संविधान न्यायपीठ और दिल्ली, चेन्नई/हैदराबाद, कोलकाता और मुंबई के चार क्षेत्रों में अंतिम अपील न्यायपीठों के विभाजन की आवश्यकता

रिपोर्ट सं. 229

अगस्त, 2009

भारत का विधि आयोग

(रिपोर्ट सं. 229)

उच्चतम न्यायालय का दिल्ली में संविधान न्यायपीठ और दिल्ली, चेन्नई/हैदराबाद, कोलकाता और मुंबई के चार क्षेत्रों में अंतिम अपील न्यायपीठों के विभाजन की आवश्यकता

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग द्वारा केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार को 5 अगस्त, 2009 को अग्रेषित ।

18वें विधि आयोग का गठन भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, विधि कार्य विभाग, नई दिल्ली के आदेश संख्या ए.45012/1/2006-प्रशा. III (एल ए) तारीख 16 अक्तूबर, 2006 द्वारा 1 सितम्बर, 2006 से तीन वर्ष के लिए किया गया ।

विधि आयोग अध्यक्ष, सदस्य-सचिव, एक पूर्णकालिक सदस्य और सात अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बना है ।

अध्यक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डा. एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

पूर्णकालिक सदस्य

प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद

अंशकालिक सदस्य

डा. (श्रीमती) देविन्दर कुमारी रहेजा

डा. के. एन. चन्द्रशेखरन पिल्लै

प्रोफेसर (श्रीमती) लक्ष्मी जामभोलकर

श्रीमती कीर्ति सिंह

न्यायमूर्ति आई. वेंकटनारायण

श्री ओ. पी. शर्मा

डा. (श्रीमती) श्यामला पप्पू

विधि आयोग आई. एल. आई. बिल्डिंग, द्वितीय तल, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001 पर स्थित है ।

विधि आयोग के कर्मचारिवृंद

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

अनुसंधान कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
सुश्री पवन शर्मा	:	अपर विधि अधिकारी
श्री जे. टी. सुलक्षण राव	:	अपर विधि अधिकारी
श्री ए. के. उपाध्याय	:	उप विधि अधिकारी
डा. वी. के. सिंह	:	सहायक विधि सलाहकार
डा. आर. एस. श्रीनेट	:	अधीक्षक (विधि)

प्रशासनिक कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
श्री डी. चौधरी	:	अवर सचिव
श्री एस. के. बसु	:	अनुभाग अधिकारी
श्रीमती रजनी शर्मा	:	सहायक पुस्तकालय और सूचना अधिकारी

इस रिपोर्ट का पाठ **http://www.lawcommissionofindia.nic.in** पर इन्टरनेट पर उपलब्ध है ।

© भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

इस दस्तावेज का पाठ (सरकारी चिह्न के सिवाय) इस शर्त के अधीन किसी प्ररूप या माध्यम में निःशुल्क पुनरुत्पादित किया जा सकता है बशर्ते कि यह ठीक-ठीक पुनरुत्पादित किया गया है और भ्रामक संदर्भ में प्रयोग नहीं किया गया है । सामग्री की अभिस्वीकृति भारत सरकार कापीराइट और विनिर्दिष्ट दस्तावेज के शीर्षक के रूप में की जाए ।

इस रिपोर्ट से संबंधित कोई पूछताछ सदस्य-सचिव, भारत का विधि आयोग, द्वितीय तल, आई. एल. आई. भवन, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-**110001**, भारत को डाक द्वारा या ई-मेल : **Ici-dla@nic.in** द्वारा संबोधित किया जाए ।

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन
(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

आई.एल.आई. भवन
(द्वितीय तल)
भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-110001
दूरभाष- 91-11-22384475
फैक्स - 91-11-23383564

अर्ध. शा.सं. 6(3)/166/2009-एल सी(एल एस) 5 अगस्त, 2009

प्रिय डा. वीरप्पा मोइली जी,

विषयः- उच्चतम न्यायालय का दिल्ली में संविधान न्यायपीठ और दिल्ली, चेन्नई/हैदराबाद, कोलकाता और मुंबई के चार क्षेत्रों में अंतिम अपील न्यायपीठों के विभाजन की आवश्यकता ।

मैं उपरोक्त विषय पर भारत के विधि आयोग की 229वीं रिपोर्ट अग्रेषित कर रहा हूं ।

2. उच्चतम न्यायालय द्वारा संवैधानिक न्यायनिर्णयन या संवैधानिक संविवादों के अवधारण का अपना निजी महत्व है । इसके अंतर्गत ऐसी विधियां जिनकी चुनौती दी गई है चाहे वे विधियां हैं या नहीं, पर शासन करने का प्राधिकार वस्तुतः, असंवैधानिक है । विशुद्धतः विधिक विवादों से परे अर्थशास्त्र, राजनीति, सामाजिक नीति आदि के प्रश्न और सभी प्रकार के तथ्य और उनके परिणाम तथा ऐसे सभी मूल्य जिसे हम इन विषयों से जोड़ते हैं, इस न्यायालय के अवधार्य विषय हैं ।

निवासः सं. 1, जनपथ, नई दिल्ली-110001. टेली. 91-11-23019465, 23793488, 23792745. ई-मेल : ch.lc@sb.nic.in.

जैसाकि संवैधानिक न्यायनिर्णयन का अपना ही स्थान होता है, अतः यह हमेशा विचार-योग्य है कि क्या एक पृथक् संविधान न्यायालय होना चाहिए, जैसी स्थिति विश्व के लगभग 55 देशों में है (आस्ट्रिया ने 1920 में विश्व के प्रथम पृथक् संविधान न्यायालय की स्थापना की थी), या कम से कम उच्चतम न्यायालय का संवैधानिक विभाजन होना चाहिए । कई योरोपीय देशों में गैर-संवैधानिक विषयों के न्यायनिर्णयन के लिए संविधान न्यायालय और अंतिम अपील न्यायालय (कोर डे कैसेसन इन फ्रेंच) के नाम से ज्ञात अपील के अंतिम न्यायालय हैं । अंतिम अपील का न्यायालय अंतिम स्तर का न्यायालय है और उसे निचले न्यायालयों के विनिश्चयों को अभिखंडित करने (फ्रेंच में कैसर) या उलटने की शक्ति है ।

4. आज हम बकाया मामलों के असहनीय बोझ, जिससे हमारा उच्चतम न्यायालय बोझिल है और देश के सुदूर क्षेत्रों में रह रहे लोगों के लिए मुकदमेबाजी की असहनीय लागत के समाधान की भी गहन तलाश कर रहे हैं । दक्षिण से चेन्नई, तिरुवन्तपुरम, पुडुचेरी, पश्चिम से गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, पूर्व से असम या अन्य राज्यों जैसे सुदूर स्थानों से उच्चतम न्यायालय में मामले की पैरवी करने के लिए नई दिल्ली आने वाले वादकारियों की व्यथाओं की कल्पना की जा सकती है ; यात्रा पर भारी रकम खर्च हो जाता है ; अपने ऐसे निजी अधिवक्ता जिसने उच्च न्यायालय में मामले की पैरवी की है, को लाना खर्च बढ़ाता है ; स्थगन प्रतिषेधक हो जाता है ; खर्चा कई गुना बढ़ जाता है ।

5. क्या उच्चतम न्यायालय का विभाजन संवैधानिक खंड और अपीलों के विधिक खंड का उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी चार क्षेत्रों की न्यायपीठों में किया जाना चाहिए, देश की न्यायिक व्यवस्था के लिए मूलभूत महत्व का विषय है । यह रिपोर्ट इस प्रश्न पर विचार करती है कि

क्या हमारे उच्चतम न्यायालय में संवैधानिक न्यायालय या खंड सृजित करने की आवश्यकता है जो अनन्यतः संविधान विधि और प्रत्येक चार क्षेत्रों में चार अंतिम अपील न्याय़पीठें अपीलों पर विचार करेंगी ।

6. हमने स्वप्रेरणा से विषय पर विचार किया है और यह सिफारिश की कि संवैधानिक और अन्य सहबद्ध मुद्दों पर विचार करने के लिए दिल्ली में संविधान न्यायपीठ की स्थापना की जाए और विशिष्ट क्षेत्र के उच्च न्यायालयों के आदेशों/निर्णयों से उद्भूत सभी अपीली कार्य पर विचार करने के लिए उत्तरी क्षेत्र के लिए दिल्ली में, दक्षिणी क्षेत्र के लिए चेन्नई/हैदराबाद में, पूर्वी क्षेत्र के लिए कोलकाता में और पश्चिमी क्षेत्र के लिए मुंबई में चार अंतिम अपील न्यायालयों की स्थापना की जाए ।

सादर,

भवदीय,

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)

डा. एम. वीरप्पा मोइली,
केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-110001

भारत का विधि आयोग

उच्चतम न्यायालय का दिल्ली में संविधान न्यायपीठ और दिल्ली, चेन्नई/हैदराबाद, कोलकाता और मुंबई के चार क्षेत्रों में अंतिम अपील न्यायपीठों के विभाजन की आवश्यकता

विषय सूची

		पृष्ठ सं.
1.	प्रस्तावना	10-12
2.	सिफारिशें और व्यक्त विचार	13-21
3.	संविधान के अनुच्छेद 130 के अधीन न्यायपीठें	22-24
4.	निष्कर्ष और सिफारिश	25-26
	परिशिष्ट	27-29

1. प्रस्तावना

1.1 वर्ष 1860 में जब उच्च न्यायालयों की स्थापना की गई थी, तब से ही प्रत्येक प्रान्त में (चीफ कमिश्नर के प्रान्तों में न्यायिक कमिश्नर न्यायालय अपीली अधिकारिता के सर्वोच्च न्यायालय थे) अपील के सर्वोच्च न्यायालय थे और उनके विरुद्ध अपील इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल में ही की जाती थी । भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने परस्पर प्रान्तों के विवादों और प्रान्तों और फेडरेशन के बीच हुए विवादों में मूल अधिकारिता के साथ भारत के फेडरल न्यायालय का सृजन किया । फेडरल न्यायालय को केवल संवैधानिक विषयों में अधिकारिता थी, किंतु फेडरल विधान मंडल न्यायालय को उच्च न्यायालयों द्वारा विनिश्चित सिविल मामलों में अपीलों की सुनवाई करने की शक्ति प्रदान कर सकता था । प्रिवी कौंसिल की अधिकारिता प्रिवी कौंसिल अधिकारिता अधिनियम, 1949 के उत्सादन द्वारा समाप्त कर दी गई और 10 अक्तूबर, 1949 से पूर्व प्रिवी कौंसिल के समक्ष लंबित अपीलें फेडरल न्यायालय को अंतरित हो गईं । हमारे संविधान के अधीन, भारत का उच्चतम न्यायालय संपूर्ण भारात का अपील का सर्वोच्च न्यायालय हो गया । इसकी अधिकारिता किसी फेडरल उच्चतम न्यायालय की तुलना में काफी व्यापक है । इसके पास संघ और राज्यों और परस्पर राज्यों के बीच विवादों की मूल अधिकारिता है । इसके पास मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन मूल अधिकारिता है । यह सिविल और आपराधिक अपील का सर्वोच्च न्यायालय है ; और इसके पास सशस्त्र बलों से संबंधित किसी विधि द्वारा या इसके अधीन गठित किसी न्यायालय या अधिकरण के सिवाय भारत के राज्यक्षेत्र में किसी न्यायालय या अधिकरण द्वारा किसी वाद या मामले में पारित या किए गए किसी निर्णय, डिक्री, अवधारण, दंडादेश या आदेश से अपील

करने की विशेष इजाजत देने की अभिभावी शक्तियां हैं ।[1] इसके पास संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन सलाहकारी अधिकारिता भी है ।

1.2. उच्चतम न्यायालय द्वारा संवैधानिक न्यायनिर्णयन या संवैधानिक संविवादों के अवधारण का अपना निजी महत्व है । इसके अंतर्गत ऐसी विधियां जिनकी चुनौती दी गई है चाहे वे विधियां हैं या नहीं, पर शासन करने का प्राधिकार वस्तुतः, असंवैधानिक है । विशुद्धतः विधिक विवादों से परे अर्थशास्त्र, राजनीति, सामाजिक नीति आदि के प्रश्न और सभी प्रकार के तथ्य और उनके परिणाम तथा ऐसे सभी मूल्य जिसे हम इन विषयों से जोड़ते हैं, इस न्यायालय के अवधार्य विषय हैं ।

1.3. जैसाकि संवैधानिक न्यायनिर्णयन का अपना ही स्थान होता है, अतः यह हमेशा विचार-योग्य है कि क्या एक पृथक् संविधान न्यायालय होना चाहिए, जैसी स्थिति विश्व के लगभग 55 देशों[2] में है (आस्ट्रिया ने 1920 में विश्व का प्रथम पृथक् संविधान न्यायालय की स्थापना की थी), या कम से कम उच्चतम न्यायालय का संवैधानिक विभाजन होना चाहिए । कई यौरोपीय देशों में गैर-संवैधानिक विषयों के न्यायनिर्णयन के लिए संविधान न्यायालय और अंतिम अपील न्यायालय (कोर डे कैसेसन इन फ्रेंच) के नाम से ज्ञात अपील के अंतिम न्यायालय हैं । अंतिम अपील का न्यायालय अंतिम स्तर का न्यायालय है और उसे निचले न्यायालयों के विनिश्चयों को अभिखंडित करने (फ्रेंच में कैसर) या उलटने की शक्ति है ।

1.4. आज हम बकाया मामलों के असहनीय बोझ जिससे हमारा उच्चतम

---

[1] 1एच. एम. सीरवी, कांस्टीट्यूशनल ला ऑफ इंडिया – ए क्रिटिकल कमेंट्री, तीसरा संस्करण (1984) जिल्द-2, पृष्ठ 2181-2182.

[2] उदाहरण के लिए, केन्द्रीय अफ्रीकी गणराज्य, कोलम्बिया, मिस्र, फ्रांस, जर्मनी, इरान, इटली, म्यांमार, रूस, दक्षिणी अफ्रीका

न्यायालय बोझिल है और देश के सुदूर क्षेत्रों में रह रहे लोगों के लिए मुकदमेबाजी की असहनीय लागत के समाधान की भी गहन तलाश कर रहे हैं । दक्षिण से चेन्नई, तिरुवन्तपुरम, पुडुचेरी, पश्चिम से गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, पूर्व से असम या अन्य राज्यों जैसे सुदूर स्थानों से उच्चतम न्यायालय में मामले की पैरवी करने के लिए नई दिल्ली आने वाले वादकारी की व्यथाओं की कल्पना की जा सकती है ; यात्रा पर भारी रकम खर्च हो जाती है ; अपने ऐसे निजी अधिवक्ता जिसने उच्च न्यायालय में मामले की पैरवी की है, को लाना खर्च बढ़ाता है ; स्थगन प्रतिषेधक हो जाता है ; खर्चा कई गुना बढ़ जाता है ।

1.5. क्या उच्चतम न्यायालय का विभाजन संवैधानिक खंड और अपीलों के विधिक खंड का उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी चार क्षेत्रों के न्यायपीठों में किया जाना चाहिए, देश की न्यायिक व्यवस्था के लिए मूलभूत महत्व का विषय है । यह रिपोर्ट इस प्रश्न पर विचार करती है कि क्या हमारे उच्चतम न्यायालय में संवैधानिक न्यायालय या खंड सृजित करने की आवश्यकता है जो अनन्यतः संविधान विधि और प्रत्येक चार क्षेत्रों में चार अंतिम अपील न्यायपीठों के विषयों पर विचार करेंगी ।

2. सिफारिशें और व्यक्त विचार

2.1 वर्ष 1984 में दसवें विधि आयोग ने "उच्चतम न्यायालय के भीतर संवैधानिक विभाजन – एक प्रस्ताव" शीर्षक वाली अपनी 95वीं रिपोर्ट में यह सिफारिश की कि भारत का उच्चतम न्यायालय दो खंडों, अर्थात् (क) संवैधानिक खंड, और (ख) विधिक खंड, से मिलकर बना होना चाहिए । उच्चतम न्यायालय के प्रस्तावित संवैधानिक खंड को संविधान विधि के मामलों अर्थात् संविधान के निर्वचन या संविधान के अधीन जारी आदेश या नियम विषयक विधि के सारवान प्रश्न वाले प्रत्येक मामले और संविधान विधि के प्रश्न वाले प्रत्येक अन्य मामले सौंपे जाने चाहिए । उच्चतम न्यायालय में आने वाले अन्य मामलों को इसके विधिक खंड को दिया जाएगा । आगे यह सिफारिश की गई थी कि उच्चतम न्यायालय में नियुक्त न्यायाधीश आरंभ से ही किसी विशिष्ट खंड में नियुक्त किए जाएं । इन सिफारिशों को प्रभावी बनाने के लिए उक्त रिपोर्ट में यह व्यक्त किया गया था कि संविधान का संशोधन आवश्यक होगा ; संघ सूची की प्रविष्टि 77 के साथ पठित अनुच्छेद 246(1) द्वारा साधारण विधान या संविधान के अनुच्छेद 145 द्वारा कानूनी नियम पर्याप्त नहीं होगा ।

2.2 यह उल्लेखनीय है कि दसवें विधि आयोग ने इस प्रश्न पर भी विचार किया था कि संवैधानिक खंड के बजाय संवैधानिक प्रश्नों के विनिश्चय के लिए संवैधानिक न्यायालय का सृजन किया जाना चाहिए, किन्तु इस विचार को ध्यान में रखते हुए कि संवैधानिक मुद्दों पर विचार करने के लिए पृथक् न्यायालय के सृजन से उच्चतम न्यायालय के भीतर जैसी संरचना इस समय है अधिक व्यापक और जटिल प्रकृति की संरचनात्मक परिवर्तन अंतर्वलित होगा जिससे संवैधानिक और गैर-संवैधानिक मामलों पर विचार करने के लिए पृथक् विभाजन सृजित करने के प्रस्ताव की आवश्यकता होगी तथा संवैधानिक खंड के पक्ष में अति उत्साही राय के बारे में आयोग ने संवैधानिक न्यायालय सृजित करने के विचार की पैरवी नहीं की ।

2.3 ग्यारहवें विधि आयोग ने वर्ष 1988 में प्रस्तुत "उच्चतम न्यायालय – नए सिरे से विचार" शीर्षक वाली अपनी 125वीं रिपोर्ट में उच्चतम न्चयायालय को दो भागों में विखंडित करने की उपरोक्त सिफारिश को दोहराया और इसके लिए अतिरिक्त कारण बताए । आयोग ने उक्त रिपोर्ट के पैराग्राफ 4.17 में अतिरिक्त कारण इस प्रकार बताए :

> "उच्चतम न्यायालय अकेले दिल्ली में ही है । भारत सरकार ने कई अवसरों पर दक्षिण में न्यायपीठ स्थापित करने के लिए भारत के उच्चतम न्यायालय से राय चाही । उच्चतम न्यायालय ने इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया । परिणाम यह है कि दक्षिण में तमिलनाडु, पश्चिम में गुजरात और पूर्व में असम और अन्य राज्य जैसे सुदूर स्थानों से आने वाले लोगों को उच्चतम न्यायालय में पहुंचने के लिए यात्रा पर भारी रकम खर्च करना पड़ता है । अपने ऐसे निजी अधिवक्ता को उच्चतम न्यायालय में लाने की परम्परा है इससे और खर्चा बढ़ता है और स्थगन प्रतिषेधक हो जाता है । स्थगन न्यायालय की आवर्ती प्रकृति है । खर्चा कई गुना बढ़ जाता है । अब यदि उच्चतम न्यायालय का विखंडन संवैधानिक न्यायालय और अपील न्यायालय या फेडरल अपील न्यायालय में हो जाता है तो उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी और केन्द्रीय भारत के स्थानों की न्यायपीठों के होने से फेडरल अपील न्यायालय के प्रति कोई गंभीर अपवाद नहीं लिया जा सकता । उससे न केवल खर्चे में काफी कमी आएगी बल्कि वादकारियों को उसी अधिवक्ता द्वारा जिसने उसकी उच्च न्यायालय में सहायता की थी, उसके मामले पर बहस करने का फायदा भी होगा और जिसे काफी दूरी तक यात्रा करने की आवश्यकता नहीं होगी । जैसाकि उस रिपोर्ट[3] में इंगित किया गया है, जब कभी संवैधानिकता का प्रश्न उठता है, उच्चतम न्यायालय सामूहिकतः

---

[3] भारत के विधि आयोग की 95वीं रिपोर्ट

दिल्ली में बैठ सकती है और इस पर विचार कर सकती है । यह लागत लाभ तर्काधार उस रिपोर्ट[4] में की गई सिफारिशों के दुबारा समर्थन के लिए अतिरिक्त लेकिन महत्वपूर्ण कारण है ।"

2.4 मामलों के विचारण और निपटान में विलम्ब की समस्या और परिणामतः सर्वोच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालयों में मामलों का लंबित रहना भारी चिन्ता, बहस, चर्चा और आलोचना का विषय हो गया है । कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय की विभाग संबंधी संसदीय स्थायी समिति ने अपनी 28वीं रिपोर्ट में उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) संशोधन विधेयक 2008 पर विचार करते हुए इस प्रकार उल्लेख किया :–

" समिति ने यह महसूस किया है कि लोगों को न्याय देने में अति विलम्ब संस्था के रूप में न्यायपालिका के प्रयोजन को ही विफल करता है । न्यायपालिका के विभिन्न स्तरों पर मामलों के लंबित रहने की समस्या की महत्ता को इस संदर्भ में समझना चाहिए । लोग अपनी शिकायतों के प्रतितोष और न्याय पाने के लिए अंतिम आश्रय के रूप में न्यायिक उपचार का अवलंब लेते हैं । ऐसा इसलिए है क्योंकि लोगों की विधायिका और कार्यपालिका से अधिक लोगों की न्यायिक प्रणाली में उनकी परम आस्था और विश्वास है । इस संदर्भ में मामलों का लंबित रहना निर्धन, न्याय चाहने वाले आम आदमी को प्रभावित करता है । संभवतः यही कारण है कि यह कहा गया है कि विलंबित न्याय, न्याय न प्रदान किए जाने के बराबर है । तथापि, सरकार और स्वयं न्यायपालिका द्वारा उठाए गए विभिन्न उपायों के बावजूद यह गंभीर चिन्ता का विषय है कि वर्षों से मामलों का लंबन या बकायापन निरन्तर बढ़ रहा है जिससे न्यायिक प्रणाली समग्रतः थम सी गई

---

[4] - वही -

है । इसके अतिरिक्त, उच्चतम न्यायालय में मामलों का लंबित रहना न्यायिक प्रणाली में विलम्ब का पर्याप्त प्रतिबिम्बन है अतः गंभीर चिन्ता का विषय होने के कारण तत्काल उपचारात्मक कदम उठाए जाने की अपेक्षा है ।"

2.5 स्थायी समिति के समक्ष प्रस्तुत उच्चतम न्यायालय न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने के लिए विधेयक पर न्याय विभाग की पृष्ठभूमि टिप्पण में यह कहा गया है :–

" भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने सूचित किया है कि 1.3.2007 को उच्चतम न्यायालय में 41,078 मामले लंबित थे और न्यायाधीश अधिक भार से बोझिल महसूस कर रहे हैं और भारी कार्य दबाव में काम कर रहे हैं । उन्होंने आगे कहा कि समाधानप्रद रूप से उच्च दर निपटान के बावजूद उच्चतम न्यायालय में मामलों का विलंबन तुलनात्मकतः मामले के उच्च दर पर संस्थित किए जाने के कारण लगातार बढ़ता जा रहा है । न्यायालयों में मामलों के विलंबन का कारण जटिल कारकों के साथ-साथ प्रत्यक्षतः शीर्ष पर अपर्याप्त न्यायाधीशों की कमी भी कहा जा सकता है ।"

2.6 स्थायी समिति के समक्ष जो कहा गया है, इस तथ्य से स्पष्टतः साबित होता है कि वर्ष 1950 में, 1215 मामले (1037 नए मामले और 178 नियमित मामले) संस्थित किए गए थे । निपटान दर 525 (491 नए मामले और 34 नियमित मामले) थी और वर्ष के अंत में मामलों के लंबित रहने की स्थिति 690 (546 नए मामले और 144 नियमित मामले) थी । अतः, 1215 मामलों के संस्थित रहने पर 690 मामलों का निपटान हुआ और न्यायाधीशों की संख्या 7 थी । उत्तरोत्तर वर्षों में, न्यायाधीशों की संख्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को छोड़कर 1950 में 7 से 1956 में 10, 1960 में 13, 1977 में 17 और 1986 में 25 और अब 2009 में न्यायाधीशों की संख्या 30 है । वर्ष 2008 में जनवरी से अप्रैल तक मामलों

के संस्थापन की कुल संख्या 28007 थी और मामलों के निपटान की संख्या 28,559 अर्थात् मामलों के संस्थापन से 552 मामला अधिक थी । फिर भी मामलों का लंबन 46374 ही बना रहा । इससे यह स्पष्टतः दर्शित होता है कि कई वर्षों से संचयित मामलों की विचाराधीनता भी बढ़ती ही जा रही है । विशेषकर तीन वर्षों अर्थात् 1989, 1990 और 1991 में विचाराधीनता आंकड़ा एक लाख से अधिक पार कर गया है । वर्ष 1950 से अप्रैल, 2008 तक उच्चतम न्यायालय में मामलों के संस्थापन, निपटान और विचाराधीनता का पूरा चार्ट **परिशिष्ट** पर है ।

2.7 उक्त चार्ट से पता चलता है कि सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप लंबित मामलों की संख्या में कमी नहीं आयी । अतः, यह स्पष्ट है कि न्यायाधीशों की संख्या की अपर्याप्तता के अलावा अन्य कारण हैं, जो उच्चतम न्यायालय में अनिर्णीत मामलों के संचयन के लिए उत्तरदायी हैं ।

2.8 एक महत्वपूर्ण कारक जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, यह है कि 1987 में प्रस्तुत "न्यायपालिका में मानवशक्ति योजना : एक रूपरेखा" शीर्षक वाली 120वीं विधि आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में न्यायाधीशों और जनसंख्या का अनुपात प्रति दस लाख 10.5 न्यायाधीश है (श्री न्यायमूर्ति एस. पी. भरुचा, भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति ने 2001 में अपने विधि दिवस संबोधन में कहा कि यह आंकड़ा 12 या 13 होना चाहिए) जबकि यह यू. एस. ए. में प्रति दस लाख 107, कनाडा में प्रति दस लाख 75.2, यू. के. में प्रति दस लाख 50.9 और आस्ट्रेलिया में प्रति दस लाख 41.6 है ।

2.9 अतः, यह स्पष्ट है कि हमारे देश में न्यायाधीशों और जनसंख्या के बीच अनुपात निराशाजनक रूप से कम है । यह सर्वोच्च न्यायालय से भी प्रकट होता है चूंकि न्यायाधीशों की संख्या 25 थी और जनवरी-अप्रैल, 2008 में 28,007 मामले संस्थित किए गए थे । अनुपात 1 : 112

निकलता है । ऊपर दिया गया आंकड़ा केवल नए मामलों के संस्थित किए जाने का है । यदि 46,374 बकाया लंबित मामलों को हिसाब में लिया जाए तो अनुपात 1 : 1855 होगा ।

2.10 अतः, यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि बकाया मामलों के ढेर को समाप्त करने और न्यायपालिका में भावी विकासात्मक कार्यक्रमों के संवर्धन के लिए तेजी से उच्चतम न्यायालय की न्यायपीठ-संख्या बढ़ायी जाए और तद्द्वारा न्याय-प्रदान प्रणाली में विलम्ब में कमी आए और त्वरित न्याय को बढ़ावा मिले जो संविधान का स्वीकृत लक्ष्य है । लेकिन समानतः प्रभावी रूप से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि हो सकता है कि न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि मात्र से प्रणाली के सुधार में सहायता न हो ।

2.11 डा. पी. सी. अलेक्जेन्डर, तमिलनाडु और महाराष्ट्र के भूतपूर्व राज्यपाल और संसद-सदस्य ने उस रुग्णता पर काफी प्रकाश डाला जो न्यायिक प्रणाली को बीमार करता है । एशियन एज[5] में प्रकाशित "न्याय लंबित है" शीर्षक वाले अपने लेख में डा. अलेक्जेन्डर ने इस प्रकार कहा :–

> "निस्संदेह, न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाना, रिक्तियों को भरने की तत्परता और कार्यावस्था सुविधाओं में सुधार न्यायिक प्रणाली की दक्षता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन अकेले ये बातें ही विचाराधीनता समस्या के पर्याप्त हल नहीं हो सकते । ऐसे कई उपाय हैं जो न्यायपालिका सरकार से अतिरिक्त वित्तीय सहयोग की प्रतीक्षा किए बिना कर सकती है, लेकिन न्यायपालिका द्वारा इन पर बहुत थोड़ी प्रभावी कार्रवाई की गई है और वे मामलों में निपटान में विलम्ब कारित करते रहते हैं । इनमें साक्षियों की उनकी परीक्षा के लिए नियत तारीखों पर पेश किए जाने जैसे मामलों में न्यायालयों द्वारा शिथिलता दर्शाना, उपयुक्त कारणों के

---

[5] http:www.asianage.com 22.7.2009 को देखा ।

बिना मामलों के स्थगनों के अनुरोध को मंजूर करना, दस्तावेजों की प्रतियां देने में अधिक विलम्ब करना, अधिवक्ताओं द्वारा लम्बी बहस करने की अनुज्ञा देना और स्वयं न्यायाधीशों द्वारा अनावश्यक रूप से लम्बे निर्णय लिखने की पद्धति सम्मिलित है ।

निचले न्यायालयों से अपील ग्रहण करने में न्यायालयों का उदारतापूर्ण बर्ताव का भी बकाया मामलों का ढेर बढ़ाने में निरन्तर योगदान रहा है । ऐसे लोग जिनके पास वित्तीय संसाधन हैं, निचले न्यायालयों के विनिश्चयों की अपील अगले उच्चतर न्यायालय और अंततः उच्चतम न्यायालय में करते हैं चाहे उस मामले में विधि का कोई निर्वचन अंतर्वलित न हो । जब अभियुक्त प्रभावशाली राजनेता या धनी व्यवसायी है तो मामले अनन्त काल तक चल सकते हैं जिससे इस प्रक्रिया में स्वयं न्यायिक प्रणाली की ख्याति भी कम हो जाती है । यदि अपराध की प्रकृति के आधार पर अपीलों की संख्या अर्थात् एक या दो तक सीमित हो तो इससे विचाराधीनता कम करने में काफी सहायता मिल सकती है ।

कई महीनों तक और कुछ मामलों में, अपनी सेवानिवृत्ति तक निर्णय देने में विलम्ब करने की कुछ न्यायाधीशों की आदत भी विलंबित न्याय का एक अन्य कारण है । यद्यपि एक मास की अधिकतम समय सीमा को निर्णय देने के लिए युक्तियुक्त समझा गया है लेकिन किसी समय सीमा के प्रवर्तन का कोई तंत्र नहीं है और इस प्रकार कुछ न्यायाधीशों को यह कदाचार अनियंत्रित रहता है । पुनः बकाया मामलों के ढेर को समाप्त करने में सहायता के लिए अस्थायी अवधि के लिए उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की सेवाएं लेने के लिए संविधान के उपबंधों का उपयोग करने के लिए न्यायपालिका द्वारा कोई गंभीर प्रयास नहीं किए जा रहे हैं । यह प्रतीत होता है कि सेवानिवृत्त न्यायाधीश इस हैसियत में सेवा करने के प्रति अनिच्छुक

हैं क्योंकि वे समझते हैं कि ऐसी सेवा उनकी हैसियत के योग्य नहीं है । ऐसा कोई कारण नहीं है कि क्यों इस मुद्दे को सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के समाधानप्रद रूप से हल नहीं किया जा सकता लेकिन न्यायपालिका इन संवैधानिक उपबंधों का अवलंब लेने के बारे में बहुत इच्छुक नहीं दिखाई देते ।"

2.12 हमने अपने देश की न्यायिक प्रणाली के कार्यकरण के पिछले 59 वर्षों में उपरोक्त कुछ उपायों का परीक्षण किया । परिणाम संतोषप्रद स्थिति से काफी दूर प्रतीत होते हैं । समय आ गया है कि अब शीघ्र न्याय के लक्ष्य को स्पन्दमान वास्तविकता बनाने के लिए संपूर्ण न्यायिक संरचना का पुनर्नवीकरण करना होगा । प्रायः यह तर्क किया जाता है कि उच्चतम न्यायालय के कार्य के विद्यमान पैटर्न का पुनरीक्षण किए जाने की आवश्यकता है यदि इस दिशा में कोई सफलता लानी है । प्रायः उच्चतम न्यायालय महत्वहीन तथ्यों के मुद्दों पर धुंआधार अपीलें स्वीकार कर स्वयं को बोझिल बनाता है । वस्तुतः, उच्चतम न्यायालय में केवल महत्वपूर्ण मुद्दों पर ही वाद लाए जाने की आवश्यकता है। यह भी कि वर्तमान स्थिति के अनुसार उच्चतम न्यायालय देश के अधिकांश लोगों के पहुंच-योग्य नहीं है ।

2.13 इस संदर्भ में, यह उल्लेखनीय है कि विधि और न्याय की संसदीय स्थायी समिति ने अपनी दूसरी (2004), छठी (2005) और पंद्रहवीं (2006) रिपोर्टों में बार-बार यह सुझाव दिया है कि आम आदमी को शीघ्र न्याय दिलाने के लिए उच्चतम न्यायालय की न्यायपीठें देश के दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तरी-पूर्वी भागों में स्थापित की जाएं । स्थायी समिति ने अपनी 20वीं (2007), 26वीं (2008) और 28वीं (2008) रिपोर्टों में यह सुझाव दिया कि परीक्षण आधार पर उच्चतम न्यायालय की एक न्यायपीठ कम से कम चेन्नई में स्थापित की जाए क्योंकि इससे उन निर्धनों की काफी सहायता होगी जो अपने जन्म-स्थान से दिल्ली की यात्रा नहीं कर सकते । इन रिपोर्टों के बावजूद, माननीय उच्चतम न्यायालय अब तक अपनी न्यायपीठें

स्थापित करने से संबंधित सुझाव से सहमत नहीं है ।

2.14 पूर्वोक्त 15वीं रिपोर्ट का पैरा 8.36 इस प्रकार है :–

" समिति देश के अन्य भागों में उच्चतम न्यायालय की न्यायपीठें स्थापित करने के लिए कोई विश्वासोत्पादक कारण या इसका औचित्य दिए बिना लगातार विरोध से संतुष्ट नहीं है । अतः, समिति अपना पूर्व मत ही व्यक्त करती है कि देश के अन्य भागों में उच्चतम न्यायालय की न्यायपीठों की स्थापना से ऐसे निर्धनों को बहुत अधिक सहायता मिलेगी जो अपने जन्म-स्थान से दिल्ली की यात्रा करने का खर्च वहन नहीं कर सकते । अतः, समिति यह महसूस करती है कि मंत्रालय को इस गतिरोध को दूर करने के लिए आवश्यक संवैधानिक संशोधन लाने के लिए आगे आना चाहिए । "

2.15 पुनः, स्थायी समिति की 28वीं रिपोर्ट के पैरा 6.8 में ऐसा ही विचार निम्नलिखित शब्दों में दोहराया गया है :–

" समिति ने विधि और न्याय मंत्रालय की अनुदान मांगों पर अपनी दूसरी, छठी, पन्द्रहवीं, बीसवीं और छब्बीसवीं रिपोर्टों में देश के दक्षिणी, पश्चिमी और पूर्वी भागों में उच्चतम न्यायालय की न्यायपीठों की स्थापना करने पर बल दिया । समिति की सिफारिश का आधार यह है कि विभिन्न कारणों से न्याय चाहने के लिए सुदूर और दूरवर्ती क्षेत्रों मे रह रहे लोगो के लिए राष्ट्रीय राजधानी आना संभव नहीं है । समिति इस सिफारिश को दोहराती है । "

3. संविधान के अनुच्छेद 130 के अधीन न्यायपीठें

चार क्षेत्रों में अंतिम अपील न्यायपीठें

3.1 न्याय प्रशासन की उपयुक्त, व्यवहार्य और दक्ष प्रणाली तभी स्थापित की जा सकती है यदि भारत को चार जोन/क्षेत्र अर्थात् (1) उत्तरी जोन – उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर राज्यों तथा राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली और संघ राज्यक्षेत्र चण्डीगढ़ के मुकदमों पर विचार करने के लिए दिल्ली में न्यायपीठ स्थापित की जाए ; (2) दक्षिणी जोन – केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और संघ राज्यक्षेत्र पुडुचेरी और लक्षद्वीप के मुकदमों पर विचार करने के लिए चेन्नई/हैदराबाद में न्यायपीठ स्थापित की जाए ; (3) पूर्वी जोन – पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, झारखंड, असम और सिक्किम और अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह संघ राज्यक्षेत्रों समेत उत्तरी-पूर्वी राज्यों के मुकदमों पर विचार करने के लिए कोलकाता में न्यायपीठ स्थापित की जाए ; (4) पश्चिमी जोन – महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा और दादरा और नागर हवेली तथा दमन और द्वीप संघ राज्यक्षेत्रों के मुकदमों पर विचार करने के लिए मुंबई में न्यायपीठ स्थापित की जाए ।

3.2 उक्त न्यायपीठें विशिष्ट क्षेत्र के उच्च न्यायालय से उद्भूत अपीलों पर विचार करने के लिए अंतिम अपील न्यायालय के रूप में कार्य करेंगी । तब सर्वोच्च न्यायालय संवैधानिक मुद्दों और राष्ट्रीय महत्व के अन्य मामलों की दैनिक आधार पर सुनवाई कर सकेगा क्योंकि संचयित बकाये मामले अपने संबद्ध जोन को, जिस जोन के वे मामले होंगे, अंतरित हो जाएंगे ।

दिल्ली में संविधान न्यायपीठ

3.3 इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय संचयित बकाए मामलों के ढेर से मुक्त हो जाएगा जो सर्वोच्च न्यायालय के संसाधनों पर बोझ बना हुआ है और सतत दबाव कारित करता है । चूंकि विशिष्ट क्षेत्र से संबंधित संचयित

मामलों पर विशिष्ट जोनल न्यायपीठ द्वारा विचार किया जाएगा इसलिए सर्वोच्च न्यायालय संविधान का निर्वचन जैसे केवल संवैधानिक मामले, नज़ीरों के विरोध या किसी अन्य कारण से जोनल न्यायपीठों द्वारा वृहत्तर न्यायपीठों को निर्देश, ऐसे मामले जहां एक से अधिक राज्यों का हित जैसे भूमि, विद्युत, जल, आदि पर परस्पर राज्य विवाद का हित, संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन सलाहकारी राय के लिए निर्देश, संविधान के अनुच्छेद 317 के अधीन किया गया निर्देश, राष्ट्रपतीय और उप-राष्ट्रपतीय निर्वाचनों से संबंधित निर्वाचन अर्जी, दो या अधिक राज्यों के बीच वाद,आदि मामलों पर विचार करने के लिए स्वतंत्र होगा । यह सूची मात्र निदर्शी है न कि व्यापक ।

3.4 यह भी सुझाव दिया गया है कि भारत के किसी भाग के सभी लोकहित वादों का विनिश्चय सर्वोच्च संविधान न्यायपीठ द्वारा किया जाएगा जिससे कि कोई विरोधात्मक आदेश न जारी हो सके और बढ़ते मामलो पर भी अंकुश लगाया जा सके ।

3.5 पूर्वोक्त रीति से न्यायपीठों की स्थापना करने का फायदा यह है कि इसे किसी विलम्ब के बिना प्रभावी बनाया जा सकता है क्योंकि न्यायपीठों का गठन उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के अधीन स्वयं उच्चतम न्यायालय की परिधि और अधिकारिता[6] के भीतर का विषय है ।

3.6 उच्चतम न्यायालय के स्थान का उपबंध करने वाले संविधान के अनुच्छेद 130 का उल्लेख किया जा रहा है जो इस प्रकार है :–

> " उच्चतम न्यायालय दिल्ली में अथवा ऐसे स्थान या स्थानों में अधिविष्ठ होगा जिन्हें भारत का मुख्य न्यायमूर्ति राष्ट्रपति के अनुमोदन से समय-समय पर नियत करे ।"

3.7 अनुच्छेद 130 एक ऐसा समर्थकारी उपबंध है जो भारत के मुख्य

---

[6] आदेश 7, उच्चतम न्यायालय नियम, 1966.

न्यायमूर्ति को राष्ट्रपति के अनुमोदन से उच्चतम न्यायालय के स्थान के रूप में दिल्ली के अलावा स्थान या स्थानों को नियत करने के लिए सशक्त करता है । अनुच्छेद 130 का अर्थान्वयन उच्चतम न्यायालय के स्थान के रूप में दिल्ली के अलावा स्थान या स्थानों को नियत करने की भारत के मुख्य न्यायमूर्ति पर आज्ञापक बाध्यता अधिरोपित करने के रूप में नहीं किया जा सकता है । कोई न्यायालय अनुच्छेद 130 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए भारत के मख्य न्यायमूर्ति या राष्ट्रपति को निदेश नहीं दे सकता है ।[7]

3.8 यदि अनुच्छेद 130 का उदारतापूर्वक निर्वचन किया जाए तो चार क्षेत्रों में अंतिम अपील न्यायपीठों और दिल्ली में संविधान न्यायपीठ स्थापित करने के प्रयोजन के लिए किसी संवैधानिक संशोधन की अपेक्षा नहीं होगी । राष्ट्रपति के अनुमोदन से भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की कार्रवाई पर्याप्त होगी । यह भी उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 130 के अधीन भारत का मुख्य न्यायमूर्ति अभिहित व्यक्ति के रूप में कार्य करता है और उसे किसी अन्य प्राधिकारी/व्यक्ति से परामर्श करने की अपेक्षा नहीं है । केवल राष्ट्रपतीय अनुमोदन आवश्यक है । तथापि, यदि अनुच्छेद 130 का यह उदारतापूर्ण निर्वचन संभव न हो तो आवश्यक कार्रवाई करने के लिए उपयुक्त विधान/संवैधानिक संशोधन अधिनियमित किया जाए ।

3.9 यदि प्रत्येक जोनल अंतिम अपील न्यायपीठ के लिए न्यायाधीशों की संख्या छह न्यायाधीश तक सीमित की जाती है तो संपूर्ण भारत में अंतिम अपील न्यायपीठों के गठन के लिए सभी चार जोनों के लिए केवल 24 न्यायाधीशों की अपेक्षा होगी । अन्य न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय में उपलब्ध रहेंगे जहां नियमित आधार पर कार्य करने के लिए दिल्ली में एक संविधान न्यायपीठ होगा ।

---

[7] भारत संघ बनाम एस. पी. आनन्द, ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 2615

4. निष्कर्ष और सिफारिश

4.1 अंतिम अपील न्यायपीठ के साथ-साथ संविधान न्यायपीठ की अवधारणा कोई नई बात नहीं है । 20वीं शर्ती के उत्तरार्द्ध में विश्व के कई भागों में हुए लोकतांत्रिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप ऐसे न्यायालयों का प्रचुरोद्भवन हुआ जिनमें संवैधानिक न्यायनिर्णयन और अंतिम अपील की शक्तियों का प्रयोग साथ-साथ किया जा रहा था ; प्रायः संवैधानिक न्यायालय या संवैधानिक अधिकरण द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन और अंतिम अपील की शक्तियों के प्रयोग के कृत्य किए जा रहे हैं । इटली में संवैधानिक पुनर्विलोकन के एकमात्र शक्तियों से युक्त एक संवैधानिक न्यायालय है और विधि से संगत साधारण न्यायालयों के विनिश्चयों के पुनर्विलोकन की शक्ति के साथ एक अंतिम अपील उच्चतम न्यायालय है। मिस्र में भी एक अंतिम अपील न्यायालय जो विधि के अनुरूप निचले न्यायालय की समरूपता का मानीटर करता है लेकिन इससे उच्चतम संवैधानिक न्यायालय को विधियों को असंवैधानिक घोषित करने और विधायी आशय अवधारित करने और निर्णय देने का प्राधिकार है । पुर्तगाल के संवैधानिक अधिकरण के पास निचले न्यायालय विनिश्चयों का ठोस पुनर्विलोकन और सभी विधियों और विधिक मानकों का निरपेक्ष पुनर्विलोकन दोनों की अधिकतम अधिकारिता है । अन्य देश जो न्यायिक पुनर्विलोकन और अंतिम अपील या निचले न्यायालय विनिश्चयों के पुनर्विलोकन के कृत्य साथ-साथ करते हैं, आयरलैण्ड, यूनाइटेड स्टेट्स और डेनमार्क हैं ।

4. अतः, यह सिफारिश की जाती है :–

[1] संवैधानिक और यथपूर्वोक्त अन्य सहबद्ध मुद्दों पर विचार करने के लिए दिल्ली में एक संविधान न्यायपीठ का गठन किया जाए ।

[2] विशिष्ट क्षेत्र के उच्च न्यायालयों के आदेशों/निर्णयों से

उद्भूत सभी अपीली कार्य पर विचार करने के लिए उत्तरी क्षेत्र/जोन के लिए दिल्ली में, दक्षिणी क्षेत्र/जोन के लिए चेन्नई/हैदराबाद में, पूर्वी क्षेत्र/जोन के लिए कोलकाता में और पश्चिमी क्षेत्र/जोन के लिए मुंबई में चार अंतिम अपील न्यायपीठें गठित की जाएं ।

[3] यदि यह पाया जाता है कि संविधान के अनुच्छेद 130 का विस्तार करने पर भी यह उपरोक्त सिफारिशों के क्रियान्वयन के लिए संभव नहीं है तो संसद् को इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त विधान/संवैधानिक संशोधन अधिनियमित करना चाहिए ।

4.3 हम यह और सिफारिश करते हैं कि उच्चतर न्यायालयों में बकाया मामलों का बोझ कम करने और इन न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए उपयुक्त व्यक्तियों का पता लगाने की समस्या से निपटने के लिए उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सेवानवृत्ति आयु बढ़ाकर क्रमशः 70 वर्ष और 65 वर्ष की जाए ।

ह/-

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)

अध्यक्ष

ह/-	ह/-
(प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद	(डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल)
सदस्य	सदस्य-सचिव

उपाबंध

भारत के उच्चतम न्यायालय में मामलों के संस्थापन, निपटान और लंबन का विवरण

वर्ष 1950 से 30.04.2008

वर्ष	संस्थान			निपटान			लंबन		कुल
	प्रवेश	नियमित		प्रवेश	नियमित		प्रवेश	नियमित	
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1950	1,037	178	1,215	491	34	525	546	144	690
1951	1,324	600	1,924	1,560	227	1,787	310	517	827
1952	1,127	330	1,457	1,145	527	1,672	292	320	612
1953	1,354	360	1,714	1,163	252	1,415	483	428	911
1954	1,743	410	2,153	1,522	427	1,949	704	411	1,115
1955	1,580	512	2,092	1,669	200	1,869	615	723	1,338
1956	1,732	630	2,362	1,720	258	1,978	627	1,095	1,722
1957	1,490	999	2,489	1,527	411	1,928	600	1,683	2,283
1958	1,698	784	2,482	1,694	623	2,317	604	1,844	2,448
1959	1,870	783	2,653	1,829	682	2,511	645	1,945	2,590
1960	1,971	1,276	3,247	1,910	1,271	3,181	706	1,950	2,656
1961	2,000	1,214	3,214	1,899	1,654	3,553	807	1,510	2,317
1962	2,214	1,345	3,559	2,291	1,542	3,833	730	1,313	2,043

1963	2,189	1,561	3,750	2,152	1,131	3,283	767	1,743	2,510
1964	2,544	1,520	4,064	2,463	1,605	4,068	848	1,658	2,506
1965	2,366	1,535	3,901	2,444	1,341	3,785	770	1,852	2,622
1966	2,639	3,012	5,651	2,429	1,412	3,841	980	3,452	4,432
1967	2,826	2,493	5,319	2,515	1,566	4,081	1,291	4,379	5,670
1968	3,489	3,317	6,806	3,138	3,032	6,170	1,642	4,664	6,306
1969	4,185	3,512	7,697	3,731	2,737	6,468	2,096	5,439	7,535
1970	4,273	3,203	7,476	3,779	2,569	6,348	2,590	6,073	8,663
1971	5,338	2,641	7,979	4,588	1,903	6,491	3,340	6,811	10,151
1972	4,853	4,223	9,076	5,053	1,769	6,822	3,140	9,265	12,405
1973	6,298	3,876	10,174	6,112	2,063	8,175	3,326	11,078	14,404
1974	5,423	2,780	8,203	5,103	3,158	8,261	3,646	10,700	14,346
1975	6,192	3,336	9,528	5,749	2,978	8,727	4,089	11,058	15,147
1976	5,549	2,705	8,254	4,904	2,830	7,734	4,734	10,933	15,667
1977	9,251	5,250	14,501	8,714	1,681	10,395	5,271	14,502	19,773
1978	13,723	7,117	20,840	10,624	6,471	17,095	8,370	15,148	23,518
1979	16,088	4,666	20,754	11,988	3,845	15,833	12,470	15,969	28,439
1980	21,749	4,616	26,365	14,520	2,433	16,953	19,699	18,152	37,851
1981	24,474	6,566	31,040	16,528	2,162	18,690	27,645	22,556	50,201

1982	29,706	13,804	43,510	26,593	2,519	29,112	30,758	33,841	64,599
1983	37,602	18,300	55,902	35,745	10,079	45,824	32,615	42,062	74,677
1984	37,799	11,275	49,074	28,813	6,734	35,547	41,601	46,603	88,204
1985	36,243	15,349	51,592	36,004	15,074	51,078	41,840	46,878	88,718
1986	22,334	5,547	27,881	17,881	12,819	30,700	46,293	39,606	85,899
1987	22,234	5,806	28,040	15,476	6,331	21,807	53,051	39,081	92,132
1988	21,950	5,771	27,721	15,714	4,181	19,895	59,287	40,671	99,958
1989	21,213	6,256	27,469	17,389	4,011	21,400	63,111	42,916	1,06,027
1990	22,265	6,223	28,488	20,890	4,348	25,238	64,486	44,791	1,09,277
1991	26,283	6,218	32,501	28,679	6,662	35,341	62,090	44,347	1,06,437
1992	20,435	6,251	26,686	20,234	15,613	35,847	62,291	34,985	97,476* 1993
1993	18,778	2,870	21,648	17,166	3,718	20,884	37,549	21,245** (98,240)	58,794**
1994	29,271	12,775	42,046	35,853	12,037	47,890	30,967	21,983	52,950
1995	35,689	15,754	51,443	51,547	16,790	68,337	15,109	20,947	36,056
1996	26,778	6,628	33,406	35,227	10,989	46,216	6,660	16,586	23,246

* वर्ष 1992 तक दर्शित लंबित मामलों के आंकड़े फाइल पर विस्तारित संयोजित संख्या के पश्चात् मामलों को उपदर्शित करते हैं ।

** 1993 से लंबित मामलों के आंकड़े वास्तविक फाइल-वार अर्थात् फाइलों के विस्तारित संयोजित संख्या के बिना हैं ।

1997	27,771	4,584	32,355	29,130	7,439	36,569	5,301	13,731	19,032
1998	32,769	3,790	36,559	31,054	4,179	35,233	7,016	13,342	20,358
1999	30,795	3,888	34,683	30,847	3,860	34,707	6,964	13,370	20,334
2000	32,604	4,507	37,111	30,980	4,320	35,300	8,588	13,557	22,145
2001	32,954	6,465	39,419	32,686	6,156	38,842	8,856	13,866	22,722
2002	37,781	6,271	44,052	36,903	5,536	42,439	9,734	14,601	24,335
2003	42,823	7,571	50,394	41,074	6,905	47,979	11,483	15,267	26,750
2004	51,362	7,569	58,931	47,850	7,680	55,530	14,995	15,156	30,151
2005	45,342	5,198	50,540	41,794	4,416	46,210	18,543	15,938	34,481
2006	55,402	6,437	61,839	51,584	4,956	56,540	22,361	17,419	39,780
2007	62,281	6,822	69,103	56,682	5,275	61,957	27,960	18,966	46,926
जनवरी से अप्रैल, 08	24.833	3,174	28,007	25,720	2,839	28,559	27,073	19,301	46,374